मुर्दों का गाँव

•

धर्मवीर भारती

मुर्दों का गाँव

लेखक
धर्मवीर भारती

किताब महल
इलाहाबाद

कहाँ, क्या ?

१

मुर्दों का गाँव

उस गाँव के बारे में अजीब अफ़वाहें फैली थीं। लोग कहते थे कि वहाँ दिन में भी मौत का एक काला साया रोशनी पर पड़ा रहता है। शाम होते ही क़ब्रें जमुहाइयाँ लेने लगती हैं और भूखे कंकाल अंधेरे का लबादा ओढ़ कर सड़कों, पगडंडियों और खेतों की मेड़ों पर खाने की तलाश में घूमा करते हैं। उनके ढीले पंजरों की खड़खड़ाहट सुन कर लाशों के चारों ओर चिल्लाने वाले घिनौने सियार सहम कर चुप हो जाते हैं और गोश्तखोर गिद्धों के बच्चे डैनों में सिर ढाँप कर सूखे ठूठों की कोटरों में छिप जाते हैं!

और इसी से जब अखिल ने कहा कि चलो उस गाँव के आंकड़े भी तैयार कर लें, तो मैं एक बार काँप गया। बहुत मुश्किल से पास के गाँव का एक लड़का साथ जाने को तैयार हुआ। सामने दो मील की दूरी पर पेड़ों की झुरमुटों में उस गाँव की झलक दिखाई दी। मील भर पहले ही से खेतों में लाशें मिलने लगीं। गाँव के नज़दीक पहुँचते-पहुँचते तो यह हाल हो गया कि मालूम पड़ता था भूख ने इस गाँव के चारों ओर मौत के बीज बोये थे और आज सड़ी लाशों की फ़सल लहलहा रही है। कुत्ते, गिद्ध, स्यार और कौवे उस फ़सल का पूरा

फ़ायदा उठा रहे थे। इतने में हवा का एक तेज़ झोंका आया और बदबू से हम लोगों का सर घूम गया। मगर फिर जैसे उस दुर्गन्ध से लद कर हवा के भारी और अधमरे झोंके सूखे बाँसों के झुरमुटों में अटक कर रुक गये।

और, सामने मुर्दों के गाँव का पहला झोपड़ा दीख पड़ा! तीन ओर की दीवारें गिर गई थीं और एक ओर की दीवार के सहारे आधा छप्पर लटक रहा था। दीवार की आड़ में एक कंकाल पड़ा था। साथ वाला लड़का रुका—"यह! यह निताई धीवर है।"

"कहाँ?" अखिल ने पूछा—

"वह, वह निताई धीवर सो रहा है!" लड़के ने कंकाल की ओर संकेत किया—"वह धीवर था, और गाँव का सबसे पट्ठा जवान। अकाल पड़ा। भूख से उसकी माँ मर गई। उसके पास खाने को न था, फिर लकड़ी लाकर चिता सजाना तो असम्भव था। उसने अपनी नाव बाहर खींची, माँ के शरीर को नाव में रक्खा, ऊपर से सूखी घास रक्खी और आग लगा दी। रहा-सहा सहारा भी चला गया। और एक दिन वह भी यहीं भूखा सो गया; यहीं, इसी जगह उसकी माँ ने भी दम तोड़ा था।" वह लड़का बोला।

हवा का झोंका फिर चला और खोखले बाँसों से गुज़रती हुई हवा सन्नाटे में फिसल पड़ी। लड़का चीख़ पड़ा—"वह साँस ले रही है—सुना नहीं आपने?"

"क़ौन?"

"वह, वह जुलाहिन साँस ले रही है।"

"क्या वाहियात बकता है!" अखिल ने झुंझला कर डाँटा।

"कौन जुलाहिन ?"

"आपको नहीं मालूम ? वह सामने झोपड़ी है न, उसी में जुलाहे रहते थे। उसमें से तीन भूख से मर गये। रह गये सिर्फ़ जुलाहा, जुलाहिन और उनका करघा। मगर भूख से उनकी नसें इतनी सुस्त थीं कि करघा भी बेकार था। उन्होंने पास के जंगल से जड़ें खोद कर खानी शुरू कीं। उनके दाँत नुकीले हो गये जैसे सियारों की खीसें। जुलाहा बीमार पड़ गया; जुलाहिन जड़ें खोदने जाती थी। एक दिन जड़ें खोदते वक़्त खुरपी उसके कमज़ोर हाथों से फिसल गई और बायें हाथ की तर्जनी और अंगूठा कट कर गिर गया। जब वह घर पहुँची तो भूखा और बीमार जुलाहा झल्ला उठा और चिल्ला कर बोला—"निकल जा मेरे घर से, अब तू बेकार है, न करघा चला सकती है, न जड़ें खोद सकती है।"

तब से जुलाहिन का पता नहीं है। मगर कुछ लोगों का कहना है कि वह भूत बन कर गाँव की क़ब्रों के पास घूमा करती है। वह अभी साँस ले रही थी, सुना नहीं, आपने ?"

अखिल ने मेरी ओर देखा और मैंने अखिल की ओर। हम दोनों आगे बढ़े और जुलाहों के झोपड़े में घुसे। लड़का ठिठका मगर हिम्मत दिलाने पर वह भी आगे बढ़ा; हम लोग अन्दर गये। लड़के ने अन्दर से किवाड़ बन्द कर लिये और हम लोगों से सट कर खड़ा हो गया। वह डर से काँप रहा था। सामने आँगन में तीन क़ब्रें आसपास खुदी हुई थीं, बीच की क़ब्र में एक बड़ा-सा छेद था। उसमें से एक बिज्जू निकला और हम लोगों को डरावनी निगाहों से पल भर देख कर सर झटका और फिर क़ब्र में घुस गया।

आँगन में किसी मुर्दे के सड़ने की तेज़ बदबू फैल रही थी।

अखिल ने अपना केमरा सम्हाला और फ़ोटो लेने की तैयारी की। इतने में पीछे की किवाड़ें खटक उठीं। मेरे रोंगटे खड़े हो गये। अखिल बोला "कोई स्यार होगा"। किवाड़ को किसी ने जैसे बार-बार धक्का देना शुरू किया। मैंने सोचा शायद ज़िन्दा आदमी की गन्ध पाकर गाँव भर के मुर्दे हम पर हमला करने आये हैं। मेरे ख़ून का क़तरा-क़तरा डर से जम गया। लड़का बुरी तौर से चीख़ पड़ा। अखिल धीमें-धीमें गया, धीरे से किवाड़ खोल दी, और उसके बाद बुरी तरह से चीख कर भागा और मेरे पास आकर खड़ा होगया। मैं बदहवास हो रहा था, और आपको यक़ीन न होगा मैंने दरवाज़े पर क्या देखा। मैंने जिसे देखा वह आदमी नहीं कहा जा सकता था। वह जानवर भी नहीं था, भूत भी नहीं—एक औरतनुमा शक्ल जिसकी खाल जगह-जगह पर लटक आई थी, सर के बाल झड़ गये थे, निचला होठ झूल गया था और दाँत कुत्तों की तरह नुक़ीले थे। मालूम होता था जैसे आदमी के ढाँचे पर छिपकिली का चमड़ा मढ़ दिया गया हो। उसके दायें हाथ में एक खुरपी थी और बायें हाथ की दो अधकटी और तीन साबित उँगलियों में कुछ जड़ें!

वह पल पर दरवाज़े के पास खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ी। मैं चीख़ना चाहता था, मगर गला जवाब दे चुका था। वह हमारे बिल्कुल पास आकर खड़ी हो गई, जड़ें ज़मीन पर रख दीं और अपने तीन उँगुलियों वाले हाथ को मुँह के पास ले जाकर कुछ खाने का इशारा किया। हम लोगों के जान में जान आई। वह भूखी है, इसलिये वह आदमी ही होगी, क्योंकि भूख आदमीयत की पहचान है। अखिल ने अपने झोले में से केला निकाला और उसकी ओर फेंक दिया।

उसने केला उठाया और मुँह के पास ले गई। मगर फिर रुक गई, उठी और झोपड़ी के दूसरी ओर चल दी। हम लोगों को कुतूहल हुआ, हम लोग भी पीछे-पीछे चले। वह औरत सहन के एक कोने में गई। वहाँ एक मुर्दा था, जिसकी सड़ाद आँगन में फैल गई थी। देहाती लड़के ने उसे देखा और पहली बार उसके मुँह से आवाज़ निकली—"जुलाहा! यह तो जुलाहे की लाश है—यह जुलाहिन उसे भी भूत बनाने आई है।"

जुलाहिन लाश के पास गई। लाश सड़ रही थी और उसमें चीटियाँ लग रही थीं। उसने केला और जड़ें लाश के मुँह पर रख दीं और हँसी। हँसी की आवाज़ मुँह से नहीं निकली मगर खीसों को देख कर अनुमान किया जा सकता है कि वह हँसी होगी। मगर दूसरे ही क्षण वह बैठ गई और मुर्दे की छाती पर सर रख कर सुबकने लगी।

"यह जुलाहिन है? मगर यह तो कम से कम सत्तर बरस की होगी।"

"सत्तर बरस। No, It is Dropsy, देखते नहीं ज़हरीली जड़ें खाने से इसकी नसों में पानी भर गया है, माँस फूल गया है।" अखिल बोला—"इस मुर्दे को हटाओ वरना यह भी मर जायगी।"

उसके बाद हम लोग झोंपड़े के भीतर आये। पास में एक गढ़ा था। सोचा इसी में लाश डाल दी जाय। भीतर आये, लाश के पास से जुलाहिन को हटाया और उसकी लाश भी एक ओर लुढ़क गई। मैं घबड़ा गया, बेहोश-सा होने लगा, अखिल ने मुझे सम्हाला।

हम लोग थोड़ी देर चुप रहे। फिर मैं बोला—भारी गले से—"अखिल! उँगलियाँ कट जाने पर यह निकाल दी गई,

फिर किस बन्धन के सहारे, आखिर किस आधार के सहारे यह मरने के पहले जुलाहे के पास आई थी जड़ें लेकर; क्यों ?"

अखिल चुप रहा—मुर्दों के गाँव की दोनों आखिरी लाशें सामने पड़ी थीं—

"अच्छा उठो !" अखिल बोला।

हम लोगों ने लाशें उठाईं और गढ़े में डाल दीं, एक ओर जुलाहा, दूसरी ओर जुलाहिन। बाँस के सूखे पत्तों से उन्हें ढाँक दिया। मैंने अपनी उँगली से धूल में गढ़े के पास लिखा—

"ताजमहल, १९४३"

और हम चल पड़े।

२

एक बच्ची की क़ीमत

उन दिनों जब परिचित मुखभरे आपस में मिलते थे तो उनका साधारण कुशल-प्रश्न हो गया था "तुम कब से भूखे हो ?" और इसीलिये जब उस मोड़ पर एक ही गाँव की रहने वाली बिन्दो और रामी मिलीं तो बिन्दो ने फ़ौरन् पूछा—"तुम कब से भूखी हो रामी ?"

रामी महज़ एक ठंडी साँस लेकर रह गई।

बिन्दो फिर बोली—"उफ़ तुम कितनी दुबली हो गईं। और, यह तुम्हारी फूल-सी बच्ची, यह तो महज़ कंकाल रह गई है।"

रामी ने अपनी धुंधली आँखें उठा कर पूछा—"बिन्दो तुम्हारी बच्ची क्या मर गई ?"

अब की बार बिन्दो एक ठण्ढी सास लेकर रह गई।

"क्यों, क्या रास्ते ही में मर गई ?" रामी ने प्रश्न दोहराया।

"मरी नहीं—अभी ज़िन्दा है—मैंने उसे पंजाबी के हाथ बेच दिया !" बिन्दो ने सिर झुका कर कहा और रूँधे गले से सिसकने लगी।

"बेच दिया !" रामी चीख़ पड़ी "तो यह कहो, हत्यारिन अपनी बच्ची के हाड़ बेच कर पेट भर रही है। तेरी ज़बान नहीं कट गई, तेरे हाथ नहीं टूट गये बेचते बख़त !"

बिन्दो ने एक दयनीय दृष्टि से रामी की ओर देखा और सर झुका कर चुपचाप चली गई। बिन्दो चली गई, मगर उसकी बात रामी के मन को मसोस रही थी। उसने अपनी फूल-सी बच्ची को कैसे बेचा होगा..........राम ! राम ! हत्यारों का काम है यह तो !

❀ ❀ ❀

दो हफ़्ते बाद...........।

रामी के १३ वक्त फ़ाक़े हो चुके थे। एक दिन सुबह रामी की आँख खुली। बदन में बेहद कमज़ोरी थी। सर सूना-सूना-सा मालूम पड़ रहा था और मालूम होता था जैसे किसी ने आँतों पर जलते हुये अंगारे रख दिये हों। जाने कौनसी चीज़ नसों को एलास्टिक की तरह खींच रही थी। पलकों पर जैसे पहाड़ लदे थे और पुतलियाँ फिराने में मालूम होता था जैसे वह कोई भारी चट्टान हटा रही हो..........।

उसने फ़ौरन् हाथ बढ़ा कर अपनी बच्ची को टटोला और ग़ौर से और स्नेह से उसे देखा। बच्ची ने आँखें खोलीं और कुछ कहने की कोशिश की मगर कह न पाई, और अजब तौर से मुँह खोल कर हाँफने लगी।

रामी का दिल थर्रा गया। वह बहुत कोशिश करके उठी और पास के नल पर गई, टीन के डब्बे में पानी भरने की कोशिश की। मगर उसकी उँगलियाँ इतनी शिथिल हो गई थीं कि उससे नल की टोंटी नहीं घूम पाई। उसने डब्बा नीचे रख कर दोनों हाथ लगाये किन्तु असफल रही। फिर गर्दन फेर कर चारों ओर देखा, सड़क सूनी थी। उसने टोंटी में मुँह लगाया और दाँतों से खोलने की कोशिश की। एकाएक उसकी पसलियाँ

थर्राई और ढेर का ढेर ख़ून मुँह से उछल कर डब्बे में गिर पड़ा। उसे मालूम दिया जैसे वह बेहोश हो रही हो। एक हाथ से नल थाम कर वह खम्भे से टेक लगा कर खड़ी हो गई। कुछ मिनटों बाद उसको होश आया। उसने वह डब्बा उठाया और नल के सामने जमा हुये गढ़े के मटमैले पानी में धोया। पानी ख़ून की वजह से लाल हो गया। हिलोरों से पानी पर तैरते हुये सैकड़ों भुनगे और मच्छर हवा में भुनभुनाने लगे। रामी ने एक कोने से निथार कर पानी उस डब्बे में भरा और बच्ची के पास गई। बच्ची चुपचाप थी, महज़ कभी-कभी हाथ-पाँव छटपटा उठते थे। उसने थोड़ा-सा पानी उसकी सूखी हलकों में डाल दिया। बच्ची ने आँखें खोलीं और सूनी-सूनी निगाहों से माँ की ओर देखा। फिर ज़बान निकाल कर होंठ पर लगी हुई पानी की बूँदें चाटीं। रामी प्यार के साथ हाथ फेर कर बोली—"बेटी............!"

बेटी ने हाथ पटक कर सूखे गले से कहा—"भूख.......माँ!" भूख पहले कहा माँ बाद में............।

"उफ़!" रामी ने मन में कहा, "इससे तो यह पंजाबी के पास आराम से रहेगी।" फिर जैसे किसी ने उसकी आत्मा को झकझोर कर कहा—"तुम! तुम! माँ हो हत्यारिनी......." और वह अपनी बात पर अपने ही आप सहम गई।

सामने का फाटक खुला और अपने कुरते की बाहें समेटते हुये पंजाबी निकला। ढीले कुरते का छोर खम्भे में लगा और जेब में रुपये खनक गये। रुपये की खनखनाहट रामी की पसलियों में गूँज गई, और उसकी नसों में किसी सर्वग्राही ताक़त ने गरज कर कहा—"इससे...........इससे तो यह पंजाबी के पास आराम से रहेगी.........." रामी उठी और पंजाबी की

ओर चली। मगर उसके दिल की गर्मी पिघल कर फूट पड़ी। "माँ..........माँ! तुम अपनी फूल-सी बच्ची बेचने जा रही हो, बेचने!........"

रामी फिर लौट आई। बच्ची की पसलियाँ चल रही थीं और पैर जैसे ऐंठ से रहे थे। रामी की आत्मा को किसी ने मरोड़ कर कहा—"ख़ुदग़रज़! तुम माँ हो, अपनी एक छोटी-सी ख़्वाहिश पर अपनी बच्ची की जान ले रही हो। क्यों नहीं बेच देतीं? आराम से तो रहेगी, पास या दूर!"

उसका पेट जल रहा था। कुछ रुपये मिल जायँगे, पेट में वह कुछ दाने डाल सकेगी, बच्ची को भरपेट खाना मिल सकेगा। वह पंजाबी के सामने जाकर खड़ी हो गई। बच्ची को गोद में लेकर।

"सेठ सा'ब!" वह क्या कहे! उसने अभी तक मछलियाँ बेची थीं, तरकारी बेची थीं, धान बेचा था, अपनी सन्तानें कभी नहीं बेची थीं। उसे नहीं मालूम था सन्तान बेचने के लिये ग्राहक कैसे पटाया जाता है..........।

"सेठ सा'ब" उसकी ज़बान फिर रुक गई।

"क्या है? भीख..........मुफ़्त के पैसे माँगते शर्म नहीं आती?" पंजाबी ने एक डकार लेकर कहा।

"भीख नहीं सेठ सा'ब, यह लड़की ख़रीदियेगा?" उसके गले में आँसू अटक रहे थे।

पंजाबी खड़ा हो गया—"यह बच्ची, इसका मैं क्या करूँगा? यह तो घर ले जाते ले जाते मर जायगी। कोई बड़ी लड़की नहीं है, अन्दाज़न, १५, १६ बरस की..........?"

"भूखी है सा'ब, दाना मुँह में जाते ही बोलने लगेगी........।"

पंजाबी ने झुक कर बच्ची को देखा। रंग साफ़ था, कट अच्छा था, मगर भूख की वजह से दुबली थी। "अच्छी निकलेगी। ५ साल में तैयार हो जायगी, निखर जायगी.......... और कम से कम ५००) रु० तो मिल ही जायँगे।" उसने अपने मन में सोचा। "बोल कितने में देगी ?............"

रामी असमंजस में पड़ गई, कितना बताये। एक बच्ची की क़ीमत कितनी होती है ? उसे आज तक नहीं मालूम था, उसने हिसाब लगाया। एक पाव चावल आठ आने का, चार दिन को एक सेर चावल—

"२) रु० दे दीजियेगा सेठ सा'ब।"

पंजाबी ज़ोर से हँस पड़ा। "यह पेट" उसने पेट पर ठुनकी मारी जैसे किसी टायर की हवा देख रहा हो, और पसलियों में उँगली गढ़ा कर बोला, "यह हड्डियाँ—इनकी क़ीमत तो दो पैसे भी बहुत है।"

"दो पैसे !" रामी चीख़ पड़ी।

"हाँ ! हाँ पैसे और क्या कोई गाय-बकरी बेच रही है कि रुपये लेगी। अच्छा, आठ आने लेगी, नहीं ! तेरी मर्ज़ी !" कह कर फाटक के अन्दर जाने लगा।

रामी ने कुछ सोचा, और फिर आगे बढ़ कर बच्ची को पंजाबी के हाथ में रख दिया। पंजाबी ने जेब में हाथ डाल कर एक अठन्नी निकाली और उसके सामने फेंक दी। रामी की हिम्मत न हुई कि उसे उठाये। उसकी नस-नस काँप रही थी..........उसने जल्दी से अठन्नी उठाई और भागी। उसके हाड़ जल रहे थे और वह जैसे बेहोशी में चल रही थी।

सामने एक बनिये की दूकान थी। उसने अठन्नी बनिये को दे कर कहा "चावल !"

"चावल नहीं है !"

"दे दो ! महाजन ! बड़ी मेहरबानी होगी ।"

बनिये ने चारों ओर शंकित निगाह से देखा और बोला। "२) रु० सेर मिलेंगे।" उसके बाद ग़ल्ला खोला, अठन्नी उसमें रखी और दूसरी अठन्नी निकाल कर बोला—"ठगने आई है बदमाश ! खोटी अठन्नी बोहनी के वक्त। बेईमानी तो देखो।" चार आने सेर ख़रीदे हुये चावल को २) रु० सेर बेच कर अठन्नी बदलने वाला ईमानदार बनिया बोला—और खोटी अठन्नी उसके सामने फेंक दी।

रामी ग़ुस्से से उबल पड़ी—"झूठा ! धोखेबाज़ ! मेरी अठन्नी तो अच्छी थी..........।"

"अच्छा ! अच्छा ! गाली देती है। चोरी और ऊपर से सीनाज़ोरी। इसी अधर्म से तो यह अकाल पड़ रहा है.......।"

बनिये का नौकर उठा और डाँट कर बोला—"उतर दूकान से......" और धक्का दिया तो वह मुँह के बल सीढ़ियों से नीचे गिर पड़ी। नौकर ने खोटी अठन्नी उठा कर बनिये को दे दी और बोला—"रख लो लाला ! फिर किसी मौक़े पर काम आ जायगी।"

३

आदमी का गोश्त

झाड़ियों में चरमराहट की आवाज़ हुई और अमलतास के नीचे एक स्यार दीख पड़ा। स्यारनी ने दौड़ कर स्यार का स्वागत किया—वह दो दिन बाद लौटा था, उसका बदन चाटा और बोली—"तुम्हारे चेहरे पर तो अजीब रौनक़ आगई है, आख़िर तुम रहे कहाँ दो दिन तक ?"

स्यार ने अपने रोंयें फुलाये, पूँछ तानी और आँखें नचा कर कहा—"जानती हो, मैं आदमी का गोश्त खाकर आ रहा हूँ; ज़िन्दा, ताज़ा लज़ीज !"

"आदमी का गोश्त ? ताज्जुब है, लेकिन ज़िन्दा आदमी का गोश्त तुम्हें मिला कैसे ?"

स्यार बैठ गया और बोला—

"तुम्हारा साथ छूटने के बाद मैं शहर की ओर चला। उस अँधेरे में उस सड़क पर न जाने कितने देहाती डरावने प्रेतों की भाँति चले जा रहे थे—मौन, चुपचाप। उनके पैरों में ताक़त न थी मगर आँतों को मरोड़ती हुई भूख की गर्मी उनकी नसों में ख़ून की रवानी की तरह दौड़ रही थी और वे मशीनों की तरह आगे बढ़ रहे थे। उनकी चाल से मालूम देता था जैसे सैकड़ों भूखे ईसा मसीह पीठ पर सूखी हड्डियों का क्रास लादे बधस्थल की ओर जा रहे हों।

खैर, दिन भर दौड़ते रहने के बाद शाम तक मैं शहर के नज़दीक पहुँचा। वह शहर का किनारा था और वहाँ से फौजी घास के मैदान शुरू हो जाते थे। सामने दो बड़ी ऊँचो-ऊँची कोठियाँ थीं और उनके सामने सड़क के दूसरी ओर एक टूटा हुआ कच्चा झोपड़ा। मैंने झोपड़े में झाँका। एक बूढ़ा कंकाल घुटनों से पेट दबा कर सर झुकाये बैठा था। झोपड़े की एक कोठरी से एक बच्चा कराहा—"पानी........"

बूढ़ा उठा। मगर लड़खड़ा गया। अपने कमज़ोर और सूखे हाथों से उसने दीवाल थामी और एक हाथ में पानी का बर्तन लेकर बच्चे की ओर बढ़ा। बूढ़े ने हाथ बढ़ाया, बच्चे के ओठ से बर्तन लगाया मगर इतने में पैर की हड्डियाँ कड़कड़ाईं। उसका हाथ काँप गया और सारा पानी बच्चे पर गिर पड़ा। बच्चा तड़प गया और फिर गीली आवाज़ में कराहा "पानी"...

बुड्ढा पहले चुप रहा और फिर प्रेत की तरह चीख कर बोला—"मर जा! आखिर पीछा तो छूटे, कम्बख्त!" उसके बाद वह हाँफने लगा, बैठ गया और सिसकने लगा "मर जा!" "मर जा कम्बख्त!"

"ठहरो! ठहरो!" स्यारनी ने बाधा दी। पास बैठे बच्चे को पंजों से खींच कर दूध पिलाने लगी और रूँधे गले से बोली—"क्या आदमी अपने बच्चे को प्यार नहीं करते?"

"करते क्यों नहीं" स्यार ने जवाब दिया "प्यार तो कर सकने की बात है—जो कर पाता है करता ही है। सामने वाली कोठी में एक छोटा बच्चा हार्लिक्स न पीने के लिये रो रहा था और उसकी माँ उसे मना-मना मर हार्लिक्स पिला रही थी। उसे सामर्थ्य थी न प्यार करने की—झोपड़ों में रहने वाले प्यार कर कहाँ पाते हैं? मज़बूर हैं!

खैर सुनो! वहाँ से मैं चला आया—

दूसरी फुटपाथ पर कोठी की दीवार से सट कर एक आदमी लेटा था। मैं पास आया, वह शायद मर चुका था। पहले मैं चक्कर काटता रहा, फिर उसके नज़दीक गया, चारों तरफ़ अँधेरा था। कोठी की खिड़कियाँ बन्द थीं। मौक़ा अच्छा था। मैं दबे पाँव लाश के नज़दीक गया और धीरे से अपने दाँत लाश के कन्धे में गड़ो दिये—लाश चिहुँक उठी। मैं डर गया। वह आदमी अभी मरा नहीं था, ज़िन्दा था—मैं उछल कर अलग खड़ा हो गया। वह आदमी दर्दनाक आवाज़ में चीख़ने की कोशिश कर रहा था मगर आवाज़ उसके गले में फँस कर रह जाती थी। मैंने अन्दाज़ किया वह कम से कम ३ दिन से प्यासा था—और इसी से उसका ख़ून भी गाढ़ा था, स्वादिष्ट। उसने करवट बदलने की कोशिश की बेकार, हाथ हिलाने की कोशिश की बेकार—वह ठंड से अकड़ गया था, उसकी नसें जम गई थीं।

मैं फिर नज़दीक गया और उसके बाद कन्धे के हिस्से से थोड़ा-थोड़ा गोश्त काटना शुरू किया। वह आदमो फिर चीख़ा मगर उसकी पसलियों में जमा हुआ कफ़ उसके गले में अटक गया। मैंने पूरी ताक़त से उसका गोश्त छीला। उसकी लाश थोड़ी दूर तक खिंच आई और पुट्ठों से पीठ तक का गोश्त नीचे लटक गया। वह आदमी एक जमी हुई चीख़ मार कर बेहोश हो गया।

उसके बाद बेहोशी में तो कोई बाधा थी ही नहीं। मैंने धीरे-धीरे आसानी से खाना शुरू किया। मगर सुबह हो चली थी। पास की कोठी में लोग जाग गये थे—ऊपर की छत से किसी ने, रात का रक्खा हुआ ठण्डा पानी नीचे फेंक दिया। पानी बर्फ़ की तरह सर्द था। मेरे ऊपर कुछ ही छींटे पड़े और मैं भाग आया।

वह पानी सारा का सारा उस बेहोश और भूखी लाश पर पड़ा। ताज़े ज़ख्मों पर काटता हुआ बर्फ़ीला पानी पड़ा और वह आदमी तड़प गया। उसकी नसें छटपटा गईं। मगर मौत की तरह गम्भीर कोशिश करने पर भी उसके मुँह से एक भी आवाज़ न निकली।

दिन हो गया था। मैं पास की झाड़ी में छिप रहा। जाड़े की हल्की सुनहली धूप कोठी की दीवालों पर पड़ रही थी। नाचती हुई किरणें नीचे उतर कर लाश के ज़ख्मों को देखने लगी। किरणों की गर्मी ने धीरे-धीरे उस आदमी की जकड़ी हुई नसों के बन्दों को खोला, और उस आदमी ने पलकें उठाईं, करवट ली और दर्द से तड़प उठा।

उसका मुँह खुला हुआ था और उस पर पास की नालियों से उड़ कर मक्खियाँ भिनकने लगीं। उसने हाथ उठाने की कोशिश की मगर इसकी ताक़त न थी। अपनी सूखी ज़ुबान निकाल कर उसने होंठ चाटे और गर्दन घुमाई। नसों पर ज़ोर पड़ने से पुट्ठों के पास से ख़ून की धार बह निकली। उसने चीख़ने की कोशिश की; गला फँस गया। उसने बहुत बल लगा कर करवट बदली और ओठों को ज़मीन से लगा कर अपने पुट्ठों से बहता हुआ ताज़ा ख़ून चाटा।

"अपना ख़ून चाटा?" स्यारनी ने सहम कर पूछा। "हाँ अपना ख़ून! अपनी कटी हुई रगों से बहता हुआ ख़ून; जानती हो वह तीन दिन, तीन रातों का प्यासा था।"

"मगर आदमी अपना ख़ून भी पीता है?" स्यारनी ने ताज्जुब से पूछा।

"क्यों नहीं? यही तो आदमी की ख़ासियत है। आदमी पहले तो दूसरे आदमियों का ख़ून पीकर, गोश्त खाकर ज़िन्दा रहता है, और जिसे दूसरों का गोश्त नहीं मिलता वह अपना ही

ख़ून पीता है। हम जानवर ऐसा नहीं करते इसीसे तुम्हें ताज्जुब होता है, मगर हम जानवरों की सारी कमी इन्सान ने पूरी कर दी है। इसीलिये तो आदमी जानवरों से बड़ा माना जाता है।

ख़ैर! उस आदमी के गले में ख़ून जाकर जम गया, और उसकी रही-सही बोली भी जाती रही। रास्ते पर लोग आने-जाने लगे थे।

दूकान खोलने जाता हुआ एक बनिया फुटपाथ पर आ रहा था। लाश देख कर वह झिझका, और झल्ला कर बोला—"जहाँ देखो कमबख़्त मक्खियों की तरह मर जाते हैं। आने-जाने का रास्ता तो कम से कम छोड़ दें..........।"

भारी दिन किसी तौर कट गया। रात आई मैं मौक़ा पाकर फिर उसके पास गया और धीरे-धीरे उसका गोश्त खाता रहा। वह पूरी तौर से बेहोश था मगर अभी मरा नहीं था क्योंकि सूखा ख़ून किसी तरह अटक-अटक कर बह रहा था। इतने में सामने वाली खिड़की खोल कर कोई बोला—"कुत्ते को मार कर भगा दो।"

जवाब मिला—"जाने दो, वह उस भिखारी के ज़ख़म चाट रहा है। कुत्ते के चाटने से ज़ख़म अच्छे हो जायँगे।"

लोग जाग गये थे। मैंने जल्दी से उसके दिल का एक लोथड़ा नोच लिया और चल दिया।

हालाँकि मैं दिन भर सोया था मगर मुझसे चला नहीं जाता था। आदमी का गोश्त खाने से शायद चर्बी जल्दी बढ़ जाती है। मुझे ताज्जुब होता था कि ये बनिये और सेठ इतने मोटे कैसे होते हैं। मैं समझता हूँ शायद वे ज़िन्दगी भर आदमी का गोश्त खाते होंगे।

"अच्छा तो वह लोथड़ा गया कहाँ ?" स्यारनी ने पूछा। स्यार ने एक सूखे पत्तों के ढेर की ओर इशारा किया।

स्यारनी उसकी ओर उत्सुकता से बढ़ी और पत्तों को पंजे से हटाया। नीचे एक मांस का लोथड़ा था। स्यारनी ने क्षण भर स्यार की ओर देखा और उसमें दाँत गड़ोये और एकाएक उछल कर पीछे हट गयी।

"क्या हुआ ?" स्यार ने पूछा।

"यह ! यह आदमी का गोश्त नहीं है, तुमने धोखा खाया, इसमें कहीं गर्मी नहीं, लज्ज़त नहीं। इतना चिमड़ा कहीं आदमी का गोश्त होता है ?"

"नहीं ! नहीं ! वह साफ़ आदमी था।" स्यार ने प्रतिवाद किया, "क्या मैं आदमी नहीं पहचानता। ऊँची धोती लपेटे पास के किसी गाँव का कोई देहाती भुखमरा था।"

"देहाती भुखमरा ! तभी तो मैं कहती हूँ कि आदमी नहीं था।"

"क्यों ?"

"ये लोग कहीं आदमी होते हैं, भूख में सूख-सूख कर मर जाने वाले, गुलामी में घुट-घुट कर मिट जाने वाले कहीं आदमी होते हैं ?"

स्यार ने शर्म से सिर झुका लिया। उसने एक गुलाम भुखमरे का गोश्त खाया था, गुलाम भुखमरे जो आदमी नहीं होते !

४

बीमारियाँ

कातिक बीत गया था, अगहन की शुरुआत थी। बेला ने सुबह थोड़ी-सी सूखी लकड़ी इकट्ठी की थी। उसे लाकर सुलगा दिया और बैठ कर तापने लगी। खेतों से सर्द हवा के झोंके आ रहे थे। सारे गाँव पर सन्नाटा था। कहीं-कहीं आग के चारों ओर बैठे हुए किसान ताप रहे थे और दूर पर किसी कुयें से चरख की चरमराहट की आवाज़ आ रही थी।

वह सोचने लगी—आज सुबह आग़ा आया था। पारसाल के कपड़ों का दाम अभी तक नहीं चुकाया गया। इसी मारे खेती का काम छोड़ कर चन्दन शहर में मजूरी करने गया। पर इतने दिन हो गये चन्दन का अभी पता भी नहीं। कातिक पूनों की रात को भुनेसरी के हाथ चन्दन ने धोती और करनफूल भेजा था, पर अब जाने क्या हाल है। सुना है शहर में हैज़ा फैल रहा है।

अकस्मात् सन्नाटा तोड़ कर गाँव के कुत्ते भौंक उठे। उसने सोचा टीका लगाने वाला डॉक्टर आया होगा—बीमारी! बीमारी! उसका दिल दहल गया जाने चन्दन कब आयेगा।

इतने में आग की रोशनी में कोई चुपचाप आकर खड़ा हो गया, हाँपता हुआ—चेहरे पर मुर्दनी का पीलापन और बिखरे रूखे-सूखे बाल। बेला चीख पड़ी।

"बेला !" चन्दन ने सूखे गन्ने में मिठास लाने की कोशिश की..........।

❀　　❀　　❀

जब खाना खाकर दोनों आग तापने बैठे तो बेला ने कहा—"बहुत थक गये हो, लाओ पाँव दबा दूँ।" चन्दन ने निर्जीव-सा पाँव आगे बढ़ाया। बेला ने उँगलियाँ गड़ोईं। पिंडलियाँ मुर्दा होकर लटक रही थीं।

"तुम्हारी हालत क्या हो गई है ?" बेला ने पूछा। चन्दन कुछ बोला नहीं। हँस भर दिया, एक सिसकती हुई हँसी।

"अब तू ख्याल करेगी; तन्दुरुस्त तो मैं कल तक हो जाऊँगा बेला! पर रुपये कहाँ से आते, जा देख मिरजई की भीतरी जेब से रुपये तो निकाल ला।"

बेला भीतर गई। जेब में हाथ डाला। वह खाली थी, मिरजई उलट कर देखा, वह खाली थी। उसको जैसे बिजली मार गई हो। उसने मिरजई लाकर चन्दन के सामने डाल दी। चन्दन ने देखा और सर थाम लिया। तन्दुरुस्ती, जवानी, अपमान, भूख, सब का मोल महज़ एक कटी हुई जेब वह एक आह भर कर चुप हो गया।

सुबह पड़ोस की एक औरत चन्दन से मिलने आई। "कहो चन्दन! क्या कमा के लाये हो ?" चन्दन ने कुछ कहा नहीं, महज़ सूनी-सूनी निगाहों से उसकी ओर देखता रहा।

"ओफ़्फ़ोह! अधजल गगरी छलकत जाय"। आँखें मटका कर उसने घर जा कर कहा—"दस-बीस रुपये क्या कमा लाया है कि मुँह से बोल तक नहीं निकलते ?"

दिन भर में गाँव भर में सारी चर्चा नमक-मिर्च लग कर फैल गई।

❀　　❀　　❀

दोपहर में चन्दन ने बेसन की मोटी-मोटी रोटियाँ मट्ठे के साथ खाईं और सो रहा। तीसरे पहर जब सो कर उठा तो बदन टूट रहा था।

"देख मेरा बदन गरम है क्या ?"

बेला ने छू कर देखा, माथा जल रहा है, वह सहम गई। "लेट जाओ !" उसने कहा। शाम होते-होते पेट में भयानक दर्द शुरू हो गया। चन्दन दर्द से चीखने लगा। क़ै शुरू हो गई और प्यास से गला सूख गया।

पड़ोसिन देखने आई। "वाह बेला, इतनी हालत ख़राब है और दवा भी नहीं मँगवाई !"

"दवा क्या देती जीजी ! घर की दवा तो दे चुकी कुछ फ़ायदा ही नहीं हुआ।"

"चन्दन तो रुपये लाया है लाओ क़स्बे से दवा मँगवा दें।"

"रुपये कहाँ हैं जीजी !"

"अरे बेला इतनी कंजूसी ! आदमी से ज्यादा मोल नहीं है रुपये का बेला ! ये तो राक्षसी कर्म है.........।"

"पड़ोसिन चली गई।"

बेला सिसक-सिसक कर रो पड़ी। चन्दन को कम्बल उढ़ा कर वह घर से निकली। वैद्य शायद उधार दवा दे दे।

कोने वाले खेत की मोड़ पर उसे ठाकुर मिला, ज़मींदार का लड़का। "कौन, बेला ? कहाँ इतनी रात को ?"

बेला सिसक-सिसक कर रो पड़ी। उसने सब हाल बताया। "बस, इतनी-सी बात।" ठाकुर ने कहा—"अरे हम कोई ग़ैर थोड़े ही हैं। तुम्हारा ज़रा-सा इशारा होता तो दवा, रुपया, डाक्टर सब हाज़िर था बेला।" ठाकुर ने एक हाथ से नोट निकाला और दूसरा हाथ बेला की कमर की ओर बढ़ाया।

"दूर हट पिशाच !" बेला तड़प उठी। उसने चिल्लाने की कोशिश की।

ठाकुर कुछ समझ कर चला गया। आगे जाने में बेला के पाँव रुक गये। वह साँस छोड़ कर वहाँ से भागी और झोपड़ी में आकर हाँफने लगी। चन्दन चुप था। "शायद सो गये !" उसने कहा। और कम्बल ठीक कर दिया। बुखार देखने के लिये उसने माथे पर हाथ रक्खा। माथा बर्फ़ की तरह ठण्डा था। वह घबड़ा गई। भाग कर पड़ोसिन के यहाँ गई। "जीजी ! चलो देखो तो उन्हें हो क्या गया ?"

उन्होंने आकर देखा। सब कुछ हो गया था। उधार के कम्बल से ढँकी हुई चन्दन की पीली-पीली लाश, दिये की टिम-टिमाती रोशनी और कभी-कभी दिल को कँपा देने वाली आवाज़ में सूनी रात को चीरती हुई बेला की चीखें !

❀ ❀ ❀

"बेला ! लाश फूल रही है। रुपये दो तो इन्तज़ाम किया जाय।" नातेदारों ने कहा।

"रुपये !" बेला ने चाहा सर पीट लें।

"हाँ बहिन !" औरतें बोलीं, "जीते जी तो रुपये दबा कर आदमी को मार डाला अब मरते वक्त तो ठीक से किरिया-करम कर दो। आख़िर ऐसा भी रुपये का क्या मोह।"

रुपया ! रुपया ! उफ़ ! बेला करे तो क्या करे। उसे मालूम हुआ जैसे चन्दन की लाश फूल रही है, वह सड़ गई है। उसमें कीड़े लग गये हैं, हर कीड़ा लाश को थोड़ा-सा कुतरता है और बेला की ओर देखता है।

उसने देखा कोई काली छाया भूखी। उसने लाश को मरोड़ दिया। हड्डियों के टूटने की कड़कड़ाहट गूँज गई। उसके बाद !

उसके बाद जैसे उसने हड्डियों को उठा कर बेला के सर पर पटक दिया। उसका सर घूम गया। वह उठ कर भागी। किसी ने पूछा, "कहाँ ?"

"रुपया ! रुपया !" उसने अस्फुट स्वरों में कहा और बाहर चली गई।

"रुपया लेने गई है।" पड़ोसिन ने कहा, "मैंने कहा था न कहीं पास-वास गाड़ रक्खे होंगे, इतनी सीधी नहीं है बेला।"

बेला भागती गई। सामने ज़मींदार का बाग़ था। बाग़ में एक छोटी-सी झोपड़ी थी। दर्वाज़े पर ठाकुर अकेला बैठा था। ठाकुर ने आँखें उठा कर देखा। बाल बिखरे थे, आँखें सूज आई थीं। रुपया ! रुपया ! दाँत पीस कर वह बोली। उसके बोल पथरा गये थे, उसके बाद वह पत्थर की तरह खड़ी रही, पत्थर की तरह चारपाई पर गिर गई, पत्थर की तरह चूर-चूर हो गई। जब वहाँ से लौटी तो उसके हाथ में एक काग़ज़ का टुकड़ा था—नोट।

रुपया आया, लाश उठी, चिता जली, मगर बेला चुप रही। वह किस हिम्मत से आख़िर रोने की हँसी उड़ातो।

❀ ❀ ❀

चार दिन बाद !

जब पटेसरी क़स्बे की ओर जा रहा था तो उसे एक पठान मिला।

"ओ जवान !" पुकार कर उसने कहा, "तुझे चन्दन का मकान मालूम है ?"

"हाँ।"

"कहाँ है भाई ?"

"चन्दन का घर ?" पटेसरी ने आकाश की ओर उँगली उठा दी।

पठान ने उधर देखा और हँस कर बोला—"क्या हिन्दुस्तानी आसमान में भी मकान बनाते हैं, उन्हें ज़मीन पर ठौर ही नहीं मिलता है।"

"नहीं!" पटेसरी बोला, "मेरा मतलब है वह मर गया।"

"मर गया!" पठान ने ताज्जुब से पूछा।

"क्या कुछ रुपये उधार थे?" पटेसरी ने पूछा।

"हाँ थोड़े-बहुत।" पठान लौट पड़ा पटेसरी के साथ क़स्बे की ओर। "क्या हुआ था उसे?" पठान ने पूछा।

"हैज़ा।" पटेसरी ने उत्तर दिया, "शहर से भूखे आने के बाद घर पर ज़्यादा खा गया था।"

"ज़्यादा खा गया?" पठान हँसा, "जानते हो हैज़ा क्यों होता है, ज़्यादा खाने से नहीं; बात यह है कि ज़िन्दगी भर भूखे रहने के बाद कभी पेट भर खाना मिल जाय तो आँतें उसे सहेंगी कैसे?

"नहीं जी वह तो साफ़ ज़्यादा खा गया था। मरने के बाद लाश फूल गई थी। उफ़ आज तक कन्धा दर्द कर रहा है।" पटेसरी ने कहा।

पठान रुक गया। उसने चादरें हटा कर अपना कन्धा खोला और दिखाया, देखते हो मेरे कन्धे पर भी दाग़ है। जानते हो कैसे पड़ा? लम्बी कहानी है—एक मर्तबा हमारे पास खाने को कुछ नहीं था। हमारे गाँव के चारों ओर फ़ौज पड़ी थी। लेकिन हमने सिसक-सिसक कर दम नहीं तोड़ी। एक मालगाड़ी जा रही थी और उस पर लदा था लाहौर का गेहूँ। हमने गाड़ी रोक कर अनाज लूट लिया। और उसके बाद ख़ूब खाया, हफ़्ते भर का खाना खाया। मगर किसी कमबख़्त को हैज़ा नहीं हुआ। बात यह है जवान, कि न हमने भूख को मारना सीखा है और न भूख से मरना।

"और जानते हो कन्धे पर यह निशान कैसे हैं। जब फ़ौज ने बदले में गाँव पर हमला किया तो मैं कारतूस दे रहा था और मेरा बाप मेरे कन्धे पर रख कर बन्दूक़ चला रहा था। तुम हिन्दुस्तानी लोग कन्धे पर मौत ढोते हो और कन्धों के दर्द की शिकायत करते हो। हम लोग कन्धे पर ज़िन्दगी ढोते हैं और हमारे कन्धे रोज़-बरोज़ मज़बूत होते जाते हैं। समझे।"

पटेसरी ने विषय बदलना चाहा। बोला "आजकल क़स्बे में बीमारियाँ बढ़ रही हैं।"

"क़स्बे में"। पठान फिर बोला—"अरे तुम्हारे पूरे मुल्क में लोग मरते हैं भूख से और तुम्हारे चश्मे वाले डाक्टर कहते हैं हैज़ा है, मलेरिया है। और ग़रीब ही नहीं तुम्हारे यहाँ के अमीर भी मरते हैं मगर दिल की बीमारी से! वह पेशावर का सेठ, बैठे-बैठे अपनी गद्दी पर उलट गया। चलते-चलते उसका दिल बन्द हो गया यहाँ के अमीर दिल की बीमारी से मरते हैं।"

पठान हँसा, दूर पर ठाकुर एक इश्क़िया गीत गाता जा रहा था।

"और बात क्या है।" पठान ने फिर कहा, "ग़ुलाम मुल्क की आबोहवा ही ऐसी है। यानी लाशें भी तो फूलने लगती हैं छिः..........ग़ुलामी, बीमारियाँ, मौतें.........." पठान मुँह बिचका कर बोला.........।

५

कफ़न-चोर

सक़ीना की बुख़ार से जलती हुई पलकों पर एक आँसू चू पड़ा।

"अब्बा !" सक़ीना ने करीम की सूखी हथेलियों को स्नेह से दबा कर कहा—"रोते हो छिः।"

बूढ़े करीम ने बाँह से अपनी धुँधली आँखें पोंछते हुए कहा—"बेटा ! तुम बुख़ार में जल रही हो और मैं तुम्हारे ओढ़ने के लिये एक चादर भी न ला सका.......।"

सक़ीना बात काट कर बोली—"तो इसमें रोने की क्या बात ? सुनते हैं सरकार ने इन्तज़ाम किया है, बहुत-सा सस्ता कपड़ा आने वाला है। तब ख़रीद लेना। फिर मुझे तो जाड़ा भी नहीं लगता।" सक़ीना मुश्किल से अपनी कँपकँपी रोक पा रही थी।

"सरकार"........करीम एक ठंडी साँस लेकर रह गया।

सक़ीना ने देखा करीम बहुत दुखी हो रहा है। फ़ौरन ध्यान बटाने के लिये बोली—"नींद नहीं आ रही अब्बा, कोई कहानी सुनाओ !"

"पगली ! तुझे भी इस वक्त़ कहानी सूझती है। बेटा हमी लोगों के हालात कोई अख़बार में छपा दे तो बड़ी दर्दनाक कहानी बन जाय !"

"नहीं ! नहीं ! कहानी सुनाओ !" सक़ीना छोटे बच्चों की तरह मचल कर बोली ।

"अच्छा सुन ।" करीम बोला, "यहीं लखनऊ का क़िस्सा है । नवाबी अमल था । छतरमंज़िल में नवाब साहब की ऐश-गाह थी । दिन भर दोस्तों के साथ ऐश करने के बाद जब नवाब साहब आरामगाह में जाते थे तो उनकी पलकों में गुलाबियों का नशा रहता और उनके क़दमों में शराब की छलकन । उन्हें सहारा देने के लिये ज़ीने की हर सीढ़ी पर दोनों ओर नौजवान बाँदियाँ रहती थीं जिनके कन्धों पर हाथ रख कर वे धीरे-धीरे ऊपर जाते थे । सुन रही है न ?"

"हूँ"—

"अच्छा, तो एक दिन सभी बाँदिया मुर्शिदाबादी रेशम की पोशाक़ पहन कर खड़ी हुईं । नवाब साहब ने पहली बाँदी के कन्धे पर हाथ रक्खा ही था कि रेशम की चिकनाहट की वजह से दुपट्टा फिसल गया और वे गिरते-गिरते बचे । नीचे से ऊपर तक बाँदियों में एक भय की लहर दौड़ गई । नवाब साहब सम्हले और गरज कर बोले—"बदज़ातो । कल से तुम लोगों का कन्धा नंगा रहना चाहिये ।" और दूसरे दिन से उनके कन्धे नंगे रहने लगे ।

"समझी बेटी, तब कपड़ों की कमी नहीं थी, और न अब है, मगर हम ग़ुलाम और ग़रीब तब भी नंगे रहते थे और अब भी नंगे रहते हैं । जानती है क्यों ताकि अमीर लोग हमारे नंगे कन्धों पर आसानी से हाथ जमा कर सोने और चाँदी की सीढियों पर चढ़ सकें.......सो गई, सक़ीना ।"

सक़ीना सो गई थी ।

करीम उठा । एक फटी चटाई पर, बाँहों पर सर रख कर लेट रहा । उसने दोपहर से कुछ नहीं खाया था, भूख लगी थी

मगर वह धीरे-धीरे सो गया। हिन्दुस्तानियों की आदत है कि जब वे भूखे होते हैं तो सो जाते हैं और सपने देखने लगते हैं। करीम ने भी एक सपना देखा.......।

और हिन्दुस्तानियों की तरह वह भी इस दुनिया से ऊब कर बहिश्त चला गया। आगे-आगे काँपता हुआ करीम और पीछे-पीछे अपने फटे कुर्ते को सम्हालती हुई मासूम सक़ीना।

सामने तख़्त पर ख़ुदा था। करीम ने सिर झुका कर कहा—

"या ख़ुदा। हम लोग नंगे हैं। भूखे हैं।"

ख़ुदा ने अपनी आँखें उठाईं, सक़ीना पर उसकी निगाह गड़ गई और उन्होंने बग़ल में बैठे हुये एक फ़रिश्ते से कहा—"हज़रत, मैं देखता हूँ कि भूख में भी आदमी का हुस्न निखरता जाता है।"

फ़रिश्ते ने अदब से सिर झुका कर कहा—"हुज़ूर की नायाब क़ुदरत।"

ख़ुदा ने ख़ुश हो कर कहा—"अच्छा तो इस हसीना का नाम हूरों में दर्ज कर लो।"

फ़रिश्ते सक़ीना की ओर बढ़े।

"ख़बरदार!" करीम की भूखी पसलियाँ गरज उठीं।

ख़ुदा ने उसे देखा। "ये कौन है, निकालो इसे?"

"कम्बख़्त तूने इन्साफ़ का ठेका लिया है।" करीम चीख़ा, "उफ़! तुझमें ख़ुदाई हो मगर तूने अभी तक इसानियत नहीं सीखी है ओ धोखेबाज़ ख़ुदा।"

सक़ीना फ़रिश्तों के हाथों में छटपटाती हुई चीख़ी.......... "अब्बा!"

करीम की आँखें खुल गईं—छटपटाती हुई सक़ीना चीख़ रही थी "अब्बा!" करीम घबड़ा कर उठा। "अब्बा जूड़ी चढ़ रही है" थरथराती हुई सक़ीना बोली। वह पानी से निकली

हुई मछली की तरह छटपटा रही थी। करीम लाचार होकर उसकी ओर देखता रहा। उसके पास नाम के लिये एक धोती भी न थी कि पूस की रात में जूड़ी से काँपती हुई रोगिन बेटी को उढ़ा दे।

"हाथ ऐंठ रहे हैं अब्बा!" कहकर उसने हाथ झटके और महीनों का पहना हुआ जर्जर कुर्त्ता बग़ल पास से चर्रा कर फट गया। सक़ीना ने कोहनियों से लाज ढँकने की कोशिश की मगर उसके हाथ की नसें तनी जा रही थीं।" वह शर्म से तड़प गई।

क़रीम से अब न बर्दाश्त हुआ। उसकी आँखों में खून उतर आया। उसका रोम-रोम सुलग उठा और उसने पैर पटक कर कहा, "सक़ी! सक़ी! मैं कहीं से तुम्हारे लिये कपड़ा लाऊँगा बेटी! कहीं से!" और झोंके की तरह वह बाहर निकल पड़ा।

❀ ❀ ❀

क़ब्रगाह में लगे हुये पीपल के नीचे एक मुसल्मान भिखमंगा बैठा था। सामने थोड़ी-सी आग जल रही थी। उसने एक लकड़ी से आग कुरेदते हुये कहा, "या ख़ुदा! ग़ज़ब की सर्दी है। सुना था चौदहवीं सदी में क़यामत होगी, इन्साफ़ होगा। क़यामत बरपा है, मगर इन्साफ़ का पता भी नहीं।"

एकाएक तीसरी क़ब्र के पास एक मनुष्य की छाया दीख पड़ी। वह क़ब्र आज ही खुदी थी, और जुड़ाई करने वाले मज़ूर फावड़ा और कन्नी वहीं छोड़ कर चले गये थे। उस छाया ने फावड़ा उठाया और चलाना शुरू कर दिया। भिखमंगा डर से काँप गया। यह कौन है? कोई जिन? जिन नहीं फ़रिश्ता होगा, क़ब्र खोद कर गुनाहों का लेखा दर्ज करने आया है। उसके मन में एक खयाल आया। अगर वह इससे आरज़ू

करे तो दुनियाबी मुसीबतों से छुटकारा पा जायगा। वह काँपते हुये उठा और उसके नज़दीक गया। फ़रिश्ते ने फावड़ा चलाना बन्द कर दिया।

"हुज़ूर! आप पैग़म्बर हैं, ख़ुदा के फ़रिश्ते हैं। मैं.......।"

"चुप रहो, बेइज़्ज़ती मत करो, मैं फ़रिश्ता नहीं इन्सान हूँ।" फ़रिश्ते ने चीख कर कहा।

"नहीं हुज़ूर! फ़रिश्ता.......।"

"फ़रिश्ता! फ़रिश्ता! मैं चोर हूँ बुड्ढे! कफ़न चुराने आया हूँ, मेरी बेटी बिना कपड़े के मर रही है। तू भी नंगा है, अच्छा आधा कफ़न तू भी ले लेना।"

भिखमंगा सहम कर पीछे हट गया। डर से उसकी घिग्घी बँध गई और उसके बाद चीख़ कर बोला—

"चोर! चोर!........।"

रखवाले की झोपड़ी से कई लोग दौड़ पड़े।

दूसरे दिन लखनऊ में बिजली की तरह इस अनोखी चोरी की ख़बर फैल गई।

सुबह क्लाथ कन्ट्रोल आफ़िसर जब चाय पीने बैठे तो उनकी पत्नी ने चाय ढालते हुये कहा, "सुना तुमने कल एक आदमी कफ़न चुराते पकड़ा गया।"

"पागल हो गई हो क्या"? ओवरकोट और मफ़लर से कान और छाती को ढकते हुये उन्होंने कहा—"कपड़े की ऐसी भी क्या कमी! और फिर आदमी चाहे मर जाय क़ब्र खोद कर कफ़न चुराने नहीं जायगा..........।" फर के दस्ताने से ढकी उँगलियों से चाय का प्याला उठाते हुये उन्होंने जवाब दिया।

———

६

"हिन्दू या मुसलमान"

सरकारी अस्पताल के बरामदे में ३० लाशें एक क़तार में रक्खी हुई थीं। लाशें, नहीं उन्हें लाशें कहना ग़लत होगा, मगर उन्हें ज़िन्दा भी नहीं कहा जा सकता था। वे सूखी हड्डियों के मुरदार ढाँचे जिन पर ज़र्द, झुर्रीदार चमड़ा मढ़ा हुआ था। कलकत्ते की विभिन्न सड़कों से मुर्दे उठाकर लाये गये थे इलाज के लिये। उन्हें भूख की बीमारी हो गई थी और इसीलिये वे चलते-चलते सड़क पर गिर पड़ते थे और धीरे-धीरे दम तोड़ देते थे। हिन्दोस्तान जैसे ख़राब आबोहवा के देश में जहाँ आये दिन एक बीमारी चल पड़ती है, यह भी एक नई बीमारी चल निकली थी। झुन्ड के झुन्ड लोग गाँवों से चल पड़ते और चलते-चलते बिना दाँयीं और बाँयीं पटरी का ख़याल किये गिर पड़ते और फिर उठने का नाम न लेते। शासकों ने समझा यह सत्याग्रह का कोई नया तरीक़ा है मरने दो; मेडिकल विभाग ने समझा यह मलेरिया की कोई नई क़िस्म है जो बंगाल के लिये साधारण बात है। लेकिन बीमारी बढ़ती गई। जब सड़कों पर पड़ी हुई लाशों की वजह से, मारवाड़ियों की मोटरें, दफ्तर की बसें और फ़ौज की लारियों के आने-जाने में रुकावट होने लगी तो हमारी मेहरबान सरकार को फ़िक्र हुई, और इसीलिये वे ३० भुखमरे, सरकारी अस्पताल में जाँच के लिये लाये गये और सावधानी से बरामदों में नरम और सीले हुये पक्के फ़र्शों पर लिटा दिये गये।

डाक्टर परेशान थे, नर्सें परेशान थीं। यह भी क्या बीमारी है ? और एकदम से तीस नये मरीज़।

बरामदे में शान्ति थी। एक सुनसान क़ब्रगाह की तरह डरावनी ख़ामोशी। मुर्दे ख़ामोश थे। एकाएक खटखट की आवाज़ हुई और एक नर्स बरामदे की सीढ़ियों पर चढ़ती हुई दीख पड़ी। चढ़ने में उसका मोज़ा नीचे खिसक गया और वह रुक कर उसे ठीक करने लगी। उसके जूतों की खटखट शायद किसी भुखमरे के बेहया दिल से जा टकराई। उसने करवट बदली। नर्स आगे बढ़ी और जब उसके पास से गुज़रने लगी तो उसने बेबस निगाहें उठा कर नर्स की ओर देखा और बहुत प्रयत्न कर बोला—"पानी।"

नर्स पल भर को ठिठकी।

"उँह, कहाँ तक कोई काम करे सुबह से पोशाक भी तो नहीं सम्हाल पाई हूँ।" वह आगे बढ़ गई।

मरीज़ की प्यासी पसलियों से फिर दर्दनाक कराह उठी—"पानी।"

"मरने दो !" नर्स ने कहा। और बग़ल के कमरे में एक शीशे के सामने खड़े होकर गले में बँधे रूमाल की गाँठ खोलने लगी।

"पानी", घुटती हुई आवाज़ बोली। वह अभागा मरीज़ भी अपनी ज़िन्दगी और मौत की गाँठ खोलने में व्यस्त था।

नर्स परेशान थी। गाँठ खुल ही नहीं रही थी। वह आदमी चुप हो गया। नर्स ने अपनी पोशाक ठीक की और चली गई।

मरीज़ की कराह बन्द न हुई। बग़ल की लाश में कुछ हरकत हुई और कम्बल उठाकर एक बुढ़िया ने सर बाहर निकाला।

उसके बाद वह उठी और कंकालों की तरह लड़खड़ाते हुये एक टीन के डब्बे में पानी लाई और मरीज़ के मुँह से लगा दिया। वह अपनी दम तोड़ रहा था। पहला घूँट गले से उतरा मगर दूसरा घूँट हिचकी के कारण नीचे गिर गया। बुढ़िया ने क्षण भर मायूसी से मरीज़ की ओर देखा और उसके बाद चुपचाप कम्बल के नीचे लुढ़क गई।

इतने में नर्स डाक्टर को साथ लेकर लौटी और प्यासे मरीज़ की ओर इशारा किया। डाक्टर ने स्टेथेस्कोप लगा कर देखा। उस कम्बख़्त की प्यास हमेशा के लिये बुझ गई थी। डाक्टर ने स्टेथेस्कोप हटाया और अजीब आवाज़ में कहा—"ख़तम।".............

फिर जेब से नोटबुक निकाली। घड़ी देख कर टाइम दर्ज किया और नर्स से पूछा—"यह भुखमरा कहाँ से लाया गया था।"

"सप्लाई आफ़िस के सामने से!" नर्स ने जवाब दिया।

"हिन्दू था, या मुसलमान।"

"मालूम नहीं।"

"मालूम नहीं? अच्छा इसके बग़ल वाले मरीज़ से पूछो?"

"नर्स ने बग़ल वाले मरीज़ को उठाया। वह नहीं उठा।

डाक्टर ने जूते से कम्बल उलट दिया और डाँट कर कहा—"उठो?"

बुढ़िया कांप कर उठ बैठी।

"यह आदमी कौन था?" डाक्टर ने पूछा।

"हुजूर यह आदमी भूखा था।"

"भूखा था? यह कौन पूछता है—ठीक से जवाब दो।" डाक्टर ने डाँटा।

"देखो ! यह सरकारी काम है !" नर्स ने आहिस्ते से समझाया—"सरकार यह नहीं पूछती कि यह आदमी भूखा था या प्यासा। सरकार यह पूछती है कि यह आदमी हिन्दू था या मुसलमान ? बोलो—अस्पताल के रजिस्टर में दर्ज करना है।"

"मालूम नहीं हुज़ूर !" बुढ़िया बोली।

"उहँ जाने दो। अच्छा उधर वाले मरीज़ से पूछो ?"

उधर वाला मरीज़ बोला ही नहीं। नर्स ने डाँट कर पूछा तब भी उसने जवाब नहीं दिया, क्योंकि वह मर चुका था और मुर्दों को मज़हब की पहचान नहीं होती क्योंकि वे ईश्वर के समीप पहुँच जाते हैं।

डाक्टर एक और नया मुर्दा देख कर चिंतित हुआ। उसने स्टेथेस्कोप लेकर जाँच करनी शुरू की। लगभग इक्कीस भुखमरे मर चुके थे।

डाक्टर ने अपने सहकारी को बुलाया और कहा—"देखो इन बचे हुये भुखमरों को एक-एक तेज़ इंजेक्शन देकर निकाल दो। वरना ये भी मर जायँगे।"

"यदि यहाँ नहीं तो बाहर मर जायँगे" ! सहकारी ने उत्तर दिया। "बाहर मरने की परवाह नहीं। यहाँ मरेंगे तो सरकार की बदनामी होगी। और देखो—अखबार को रिपोर्ट दो कि कुल ७ की मौत हुई। बाक़ी यहाँ लाने के पहले ही मर चुके थे। समझे।" और थोड़ी देर बाद बाक़ी भुखमरे निकाल दिये गये।

❀ ❀ ❀

बुढ़िया बेहद कमज़ोर थी। वह पाँच क़दम चली और बैठ गई। पेट में जब भूख आँतों को मरोड़ने लगी तब वह फिर उठी और किसी तरह घसिटती हुई आगे बढ़ी।

बग़ल में एक साबुन की कम्पनी थी जिसके दर्वाज़े पर एक मोटा पंजाबी दरबान बैठा था। बुढ़िया उसके सामने गई और हाथ फैला दिये। लेकिन कुछ बोल न पाई। गले में आत्मसम्मान आकर रूँध गया। पंजाबी ने देखा और एक क्रूर हँसी हँस कर बोला—"चल! चल! आगे बढ़, अगर तू जवान होती तो इज़्ज़त बेचने पर शायद ८-१० पैसे मिल भी जाते—अब किस बिरते पर भीख माँगने आई है। चल हट!"

बुढ़िया की झुर्रीदार पलकों में दो बेहया आँसू झलक गये।

वह चलने को मुड़ी कि पंजाबी बोला—"तुझे ख़ैरात चाहिये। यहाँ ख़ैरात की कमी नहीं। हिन्दुस्तानी तो अपने बाप के मरने पर ख़ैरात करते हैं, फिर ज़िन्दा लाशों के लिये क्यों न ख़ैरात करेंगे। उधर जा, वहाँ सेठों ने धावा खोल रक्खा है।

बुढ़िया उधर की ओर चली। भोजनालय के द्वार पर बेहद भीड़ थी। हड्डियों के अनगिन कंकाल प्रेतों को भाँति सूखे हाथ फैला कर बैठे थे। उबले हुये ज्वार की महक हवा में फैल रही थी। बुढ़िया ने एक गहरी साँस ली जैसे साँसों के सहारे पेट भरने की कोशिश कर रही हो।

कार्यकर्त्ताओं ने ज्वार की खिचड़ी से भरी हुई एक देग लाकर सामने रक्खी और करछुल से निकाल कर ज्वार बाँटने लगे। एक हंगामा-सा मच गया। बुढ़िया उठी और कुत्ते को भगा कर देग खिसकाने का व्यर्थ प्रयास करने लगी।

इतने में एक कार्यकर्त्ता चीख़ा—"देखो! देखो! उसने देग छू ली।"

"देग छू ली ! हिन्दू है या मुसलमान ?"

"मुसलमान मालूम देती है।"

"निकाल दो कमबख्त को ?"

बुढ़िया लाञ्छना से पीड़ित होकर उठ गई। उसका क़सूर क्या था ? क्या मुसलमान कुत्तों से भी बदतर होते हैं ?

वह उठी और सर झुका कर चल दी।

सामने ही एक दूसरा धावा था। उसकी हिम्मत न हुई वहाँ जाने की, लेकिन उस पर चाँद-तारे का एक हरा झन्डा लगा हुआ था। उसको कुछ सान्त्वना हुई और वह वहाँ चली गई। सामने एक वालन्टियर था। उसने रोका—"यहाँ सिर्फ़ मुसल्मानों को खाना मिलता है।"

"मैं भी मुसलिम हूँ" बुढ़िया ने जवाब दिया।

"सामने के धावे से खाकर आई है, काफ़िर है; साफ़ काफ़िर, शकल से नहीं देखते।" दूसरा वालन्टियर बोला—

"भाग ! भाग ! यहाँ काफ़िरों की गुज़र नहीं चल हट !"

बुढ़िया का चेहरा तमतमा गया और चीख कर बोली—

"ख़ुदा के बन्दो ! अल्लाह ने अनाज के दानों पर मज़हब की छाप लगा कर नहीं भेजा है। तुम्हारी ओछी बात सुन कर मुझे अपने मुसल्मान होने में शरम आती है।"

"पागल है !" एक बोला—

"भूख से दिमाग़ ख़राब हो गया है।"

"अल्लाह काफ़िरों को ऐसी ही सज़ा देता है।"

बुढ़िया कहती ही गई—"तुम काफ़िरों को खाना नहीं देते, मत दो। मत दो कमबख्तो ! वह धरती अभी कहीं नहीं गई

जिसने हम सब को बिना मज़हब के ख़याल के पैदा किया है। तुम्हारा अनाज लेने के बजाय उसी धरती पर मर जाना मैं ज़्यादा पसन्द करूँगी। ख़ुदा तुम्हारा भला करे।"

और वह हाँफती हुई एक ओर चली गई।

दूसरे दिन कलकत्ते के एक प्रमुख दैनिक में छपा था—

"बंगाल के इस अकाल में समस्त भारत, प्रान्त और धर्म का भेद-भाव भुला कर सहायता कर रहा है। मारवाड़ियों और इस्फ़हानियों, दोनों ने सार्वजनिक भोजनालय खोले हैं। इस सम्बन्ध में हम सरकारी अस्पतालों की मूल्यवान सहायता भी नहीं भुला सकते। हम इन सब के हृदय से कृतज्ञ हैं।"

इसके नीचे एक छोटी-सी, नगण्य और महत्त्वहीन ख़बर छपी थी।

"यद्यपि सरकारी अस्पतालों के कार्य से भुखमरों की संख्या में भारी कमी है, फिर भी अभी मौतें बराबर हो रही हैं। मुस्लिम धाबे के नज़दीक एक बुढ़िया की लाश पाई गई है जो ठीक वक़्त से अस्पताल न पहुँच पाने के कारण मर गई। यह नहीं समझ में आता कि लाश जलाई जाय या दफ़नाई जाय, क्योंकि यह पहचान नहीं हो पाई है कि बुढ़िया हिन्दू थी या मुसल्मान…………।"

७

कमल और मुर्दे

"कमल ? लेकिन स्वर्ग में तो कमल होते ही नहीं !" देवदूतों ने कहा।

"किन्तु बिना कमल के आज हमारा शृङ्गार अधूरा रह जायगा। शरद के निरभ्र आकाश पर बादल के हल्के क़दमों से बिजली की तेज़ी से नाचने वाली देवकन्याओं की वेणी कमल से शून्य रहेगी। इससे अच्छा तो यह है कि उत्सव मनाया ही न जाय" देवकन्याओं ने मचलते हुये कहा।

देवदूतों ने क्षण भर सोचा और उसके बाद सहसा एक देवदूत बोला—"अच्छा, मैं पृथ्वी पर जाकर कमल लाऊँगा। लेकिन किस रंग का ?"

"पीला, ज़र्द।"

"अर्थात् प्रभात के सुनहले आकाश की भाँति।"

"नहीं, और उदासी का रंग, मुर्दों के चेहरे पर छाये हुये पीलेपन की भाँति।"

"असम्भव ! मुर्दों की भाँति ज़र्द कमल ! असम्भव है देवकन्याओ ! कमल तो विकास का प्रतीक है, शुभ्रता का प्रतीक है। उसमें मुर्दों का पीलापन कहाँ से आ सकता है ?"

"तो उत्सव नहीं मनाया जा सकता।"

देवदूत चिन्ता में पड़ गये।

सहसा एक देवदूत बोला, "ठहरो ! मैं ऐसे देशों को जानता हूँ जहाँ के कमल ताज़गी के नहीं थकान के प्रतीक हैं। मटमैली

लहरों पर उदासी की प्रतिमूर्ति की तरह शीश झुकाये रहते हैं। मैं ऐसे देशों को जानता हूँ जिनकी सरितायें विदेशी बन्धनों में बाँध दी गई हैं, जिनके पवन झकोरों को बेड़ियों में कस दिया गया है, जिनकी सूर्य रश्मियों के स्वतन्त्र विकास की हत्या कर दी गई है; और मैं जानता हूँ कि ऐसे देशों में फूलने वाले फूल मुर्दों की तरह पीले होते हैं। मैं अभी किसी ऐसे देश में जाकर पीले उदास कमल लाऊँगा।"

देवकन्याओं में उत्साह और प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। "किन्तु जल्दी करो। जल्दी अन्यथा उत्सव का समय निकल जायगा" देवकन्याएँ बोलीं।

समय कम था। देवदूतों ने चाँदनी से बनी हुई एक उत्तुंग रुपहली शिला पर खड़े होकर पृथ्वी की ओर देखा। सफ़ेद वस्त्र पर काले धब्बों की भाँति वसुन्धरा पर ग़ुलाम देश बिखरे हुये थे। किन्तु वे सब स्वर्ग से दूर थे। बहुत दूर। वहाँ तक जाकर कमल लाने का समय नहीं था। देवदूतों ने दृष्टि घुमाई। पूरब में एक ग़ुलाम देश था, जो ग़ुलाम होते हुये भी स्वर्ग से बहुत समीप था। वह अतुल शोभा से लदा हुआ देश, दूर से तो स्वर्ग की ही सीमा से घिरा हुआ मालूम देता था।

"वहाँ हमें कमल अवश्य मिलेंगे, मैं जानता हूँ। वह स्वर्ग-सा देश भारत है। चलो।" और वे देवदूत धूप के तारों से बुने हुये पंख पसार कर भारत की ओर उड़ चले। ऊँची-ऊँची हिमाच्छादित चोटियों को पार करते हुये वे भारत के पूर्वी भाग में पहुँचे। उन्होंने नीचे देखा, हरियाली से लदी हुई घाटियाँ जिन्हें बादल अपने पंख फैला कर धूप से बचाते हैं। "यह कामरूप है। यहाँ गन्धर्व-कन्यायें सूर्य की प्रथम रश्मियाँ चुरा लेती हैं, और रात में जब कमल मुर्झाने लगते हैं तो उन चुराई हुई

रश्मियों को बिखरा देती हैं, कमल खिल जाते हैं और उन प्रफुल्ल कमलों को वेणी में गूँथ कर वे निशा-शृङ्गार करती हैं। वहाँ कमल अवश्य मिलेंगे। आओ।"

दोनों देवदूत नीचे भारत-भूमि पर उतर पड़े। मगर वहाँ कहीं कमल का नाम-निशान नहीं था। दूर-दूर तक छोटी-छोटी लम्बी पत्तियों के पौदे उग रहे थे और साँवले रंग की फटी और मैली-कुचैली धोती पहने भूखी और अर्द्धनग्न स्त्रियाँ पीठ पर टोकरी लादे पत्तियाँ चुन रही थीं। पास में कुछ भूखे और अस्थिशेष बच्चे चीख रहे थे।

देवदूत आश्चर्य में पड़ गये। क्या यही भारत है। वे भ्रम से किसी दूसरे देश में उन्होंने चारों ओर अचरज से देखा। पौदों के बीच में उगी हुई एक कली पत्तों का घूँघट हटा कर उनकी ओर झाँक रही थी। देवदूत उसके पास गये और बोले—

"यह कौन-सा देश है कलिका ?"

"यह आसाम है। भारत का एक प्रान्त।" कली ने जवाब दिया। उसके स्वर में एक अजब-सी काँपती हुई उदासी थी।

"यहाँ कमल नहीं होते ?"

"नहीं, यहाँ केवल चाय होती है, देखते हो न ये पौदे। यहाँ इनकी खेती होती है।"

"खेती, किन्तु यह अन्न तो नहीं है, इनका उपयोग क्या है ?"

"ये तोड़ कर सुखा ली जाती हैं और उसके बाद यहाँ के शासक और शिक्षित वर्ग उसका पेय बना कर पीते हैं।"

देवदूतों ने आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखा।

"हरी वस्तु को सुखा कर उपयोग करने से क्या लाभ ?" उन्होंने पूछा।

कली एक फीकी-सी मुस्कान के साथ बोली—"देवदूतो ! इस देश में प्रत्येक हरी और अंकुरित होती हुई शक्ति को तोड़ कर, सुखा कर यहाँ के शासक उसे काम में लाते हैं, समझे।"

देवदूत चुप हो गये।

"अच्छा, यहाँ गन्धर्व-कन्याएँ नहीं होती हैं। शायद उनसे कमल का पता चल सके।"

"नहीं, यहाँ सिर्फ़ चाय की मज़दूरिनें होती हैं।"

"देखो-देखो" बात काट कर एक देवदूत बोला—"वह देखो, एक गन्धर्व-कन्या जा रही है।"

पास की झोपड़ी से एक तरुणी कमर में केले के हरे पत्ते लपेटे हुये निकली, उसका बाक़ी सब शरीर नग्न था।

यह पल्लवों से शृङ्गार किये हुये कोई गन्धर्व-कन्या मालूम देती है ! आओ इससे पूँछे।

"ठहरो !" कली ने रोका—"यह गन्धर्व-कन्या नहीं है। कपड़ों की कमी से लाचार, पत्तों से तन ढँक कर बेशर्मी की ज़िन्दगी जीने वाली एक ग़रीब मज़दूरिन है। इसे गन्धर्व-कन्या कह कर इसका अपमान मत करो।"

"आश्चर्य है ! इस निर्धनता में भी ये लोग इतने कला-प्रिय हैं।"

"कलाप्रिय !" कली क्रोध से काँप गई—"यह कलाप्रियता नहीं लाचारी है। इस ग़ुलामी में किसी तरह बेशर्मी से जीने का एक बहाना है। ग़ुलाम देश में कला एक भयानक बेबसी का नाम है।"

सहसा कली चुप हो गई। हवा का एक झोंका पुलिस दल की तेज़ी से लहराता हुआ आ रहा था। "राजद्रोह फैलाती है

कम्बख़्त ! ठहर !" हवा का झोंका बोला और अपने तेज़ प्रहारों से कली की पंखुड़ी-पंखुड़ी बिखरा कर गर्व से इठलाता हुआ चला गया। वह ग़ुलाम धरती से उगी हुई कली फूलने के पहले ही नष्ट कर दी गई। कली के इस असामयिक अवसान को देख कर देवदूतों का मन भारी हो गया और वे आगे उड़ चले।

आगे चलने पर उन्हें विस्तृत समतल मैदान दीख पड़े जहाँ धान के हरे खेत लहलहा रहे थे और उनमें नदियाँ ऐसी मालूम दे रही थीं जैसे नीले आकाश पर टूटते हुये तारों की ज्योति रेखायें। यह तो बंग देश मालूम होता है। हाँ, यह कविता-प्रधान देश है। यहाँ कवियों के गीत लहरों में घुल कर कमल में पराग की तरह महक उठते हैं। यहाँ नदियों के आसपास नम भूमि में कमल ख़ूब मिलते हैं और दोनों देवदूत भूमि पर उतर पड़े।

दूर पर एक नदी के किनारे दूर तक चाँदनी की तरह सफ़ेदी लहरा रही थी—"वह देखो, वहाँ हज़ारों कमल लहरा रहे हैं।"

देवदूत वहाँ चले। पास आकर उन्होंने देखा कि वे भ्रम में थे। नदी के किनारे कमल नहीं वरन् सफ़ेद कफ़न से ढँके हुये सैकड़ों मुर्दे जलाने के लिये रक्खे थे। नदी का पानी गन्दी राख, अधजली लकड़ियाँ और टूटी हड्डियों से ढँका हुआ था। एक-एक चिता पर ३-३ और ४-४ लाशें एक साथ जलाई जा रही थीं। देवदूत भयमिश्रित आश्चर्य से चीख़ पड़े।

"क्यों ? चीख़ क्यों पड़े देवदूत ?" राख से सनी हुई एक लहर ने पूछा।

"हम यहाँ कमल की खोज में आये थे और हमें मिले कफ़न से ढके हुये मुर्दे।"

लहर हँस पड़ी। उसकी हँसी चिता के शोलों की तरह, भभक उठी। "इसमें अचरज क्या है देवदूत! पराधीन देशों में सौन्दर्य खोजने वाले कलाकारों को अक्सर बाहरी सौन्दर्य के आवरण में ढँके हुये मुर्दे ही मिलते हैं।"

"मगर इतने मुर्दे ?"

"हाँ, यह पास के गाँवों में भूख से मरे हुये लोग हैं। आज भारत में सौन्दर्य, कला, जवानी और जीवन, सभी मौत की तराज़ू पर तौले जा रहे हैं।"

"अच्छा और कविता! यहाँ की कविताएँ अब जीवन-दायिनी नहीं रहीं क्या ?"

"कविताएँ ?" लहर फिर एक ज़हरीली हँसी हँस कर बोली—"यहाँ की कविता ने भूख से अकुला कर आत्महत्या कर ली।"

देवदूत निराश होकर आगे चले। नीचे एक शान्त गाँव था। खेतों में घास उगी हुई थी, झोपड़ियाँ सूनी थीं; और सामने लगे हुये केले के पेड़ों में सुनहली फलियाँ झूम रही थीं, मगर उन्हें तोड़ने वाले कहीं नज़र नहीं आ रहे थे। सारे गाँव पर एक अजब सन्नाटा छाया हुआ था। हरियाली से घिरा हुआ एक तालाब हरे चौखटे में जड़े हुये आइने की भाँति शोभित था।

"शायद उस तालाब में हमें कमल मिल जायँ।"

देवदूत उतर पड़े।

वहाँ एक भयानक दुर्गन्ध फैल रही थी। वह तालाब लाशों से पटा पड़ा था।

"क्या यहाँ कमल नहीं मिलते ?" देवदूतों ने पास में उगे हुये एक बाँस के पेड़ से पूछा।

"कमल हाँ एक दिन था, जब स्वतन्त्र आकाश से बरसती हुई स्वर्ण-रश्मियाँ लहरों को चूम कर बंगाल के तालाबों में कमल खिलाती थीं। मगर आज पूरब की परतन्त्र घाटियों से उगने वाले सूरज की कलंकित किरणें बंगाल के तालाबों में मुर्दे खिलाती हैं। आज धूप में जीवन रस के स्थान पर अकाल की विभीषिका बरसती है देवदूत !"

और बाँस की पत्तियों से ओस के आँसू झर पड़े।

साँझ हो चली थी। साँझ के झुटपुटे में एकाएक तालाब की लहरों पर कमलों की भाँति बहुत से पीले और उदास प्रकाश-पुंज खिल गये। मालूम होता था जैसे वह ज्योति के बने हुये कमल हों।

"यह क्या है ?" देवदूतों ने आशा और भय से पूछा।

बाँस के पेड़ ने सिहर कर जवाब दिया—"ये, ये उन लाशों की भूखी और अतृप्त आत्माएँ हैं। साँझ होते ही ये अन्न की तलाश में निकल पड़ती हैं। मौत भी इनकी भूख नहीं बुझा सकी है।"

"बहुत ठीक। कमल मिलना तो कठिन है चलो इन्हीं को स्वर्ग ले चलें—यह शृंगार के अच्छे उपकरण होंगे।"

"लेकिन—लेकिन मनुष्य की भूखी आत्माओं से उत्सव का शृङ्गार—यह तो पैशाचिकता है।"

"पागल हो गये हो क्या ? हम लोगों का वर्ण हिम की भाँति श्वेत है न ? और गोरी जातियों का काली जातियों की आत्माओं से खेलने का पूरा अधिकार है।" देवदूत ने जवाब दिया, और उन्होंने वे आत्माएँ बटोरीं और स्वर्ग की ओर उड़ चले। देव-कन्याएँ अधीरता से प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्हें देखते ही प्रसन्नता से उछल पड़ीं। इस नवीन उपकरण से उन्होंने केश

शृङ्गार किया। लेकिन वे भूखी आत्माएँ क्रान्त और मलीन हो कर बुझ गईं। उत्सव रुक गया।

देवदूत फिर पृथ्वी की ओर उड़ चले। "लेकिन सुनो!" देव-कन्याएँ बोलीं—"अगर यह आत्माएँ इतनी जल्दी बुझती रहेंगी तो इतनी आत्माएँ कहाँ से आवेंगी कि हम उनसे रोज़ शृङ्गार करें।"

"इसकी कोई चिन्ता नहीं, जब तक भारत विदेशियों के बन्धन में है तब तक वहाँ मुर्दों और भूखी आत्माओं की कमी नहीं—वहाँ रोज़ लोग मक्खियों की तरह मरते रहते हैं।"

"लेकिन सम्भव है भारत स्वतन्त्र हो जाय तो?"

"तुम लोग तो विचित्र बातें करती हो। तुम निश्चिन्त होकर शृङ्गार करो। अगर वहाँ के लोग ऐसे चुपचाप भूखों मरते गये तो अभी युगों तक भारत के स्वतन्त्र होने की कोई आशा नहीं।"

देव-कन्याओं में एक व्यंग की हँसी गूँज गई। देवदूत भारत की ओर चल पड़े।

८

एक-पत्र

डियर राबर्ट,

सुना है तुम कामन्स की बैठक में बंगाल के अकाल की जाँच की माँग करने वाले हो। सोफ़ी के पास आये हुये पत्र से यह भी मालूम हुआ कि तुम्हारा विचार है कि अकाल की घटनाओं से भारत में असन्तोष फैलने को सम्भावना है और तुम्हें सन्देह है कि कहीं उससे युद्ध-प्रयत्नों में बाधा न पड़े।

तुम्हारे इस सन्देह से केवल यही मालूम होता है कि तुम भारत की असली हालत से कितने अपरिचित हो। तुम्हें शायद यह नहीं मालूम कि हिन्दोस्तान की युगयुगों की सभ्यता और संस्कृति ने यहाँ वालों को इतना सहनशील बना दिया है कि तुम इसका अन्दाज़ा भी नहीं कर सकते। हिन्दोस्तानियों के धर्म में उपवास रखना और भूखों मरना एक साधना है, आध्यात्मिक निष्ठा है। इस बंगाल के उपवास से भारत की आत्मा पवित्र हो रही है, समझे। हिन्दोस्तानी अपमान और बेइज़्ज़ती की ठोकरें खाकर बहादुरी से शहादत की मौत मर जाते हैं; उनके लिए गेहूँ और रोटी का कोई सवाल ही नहीं उठता।

फिर भी, तुम्हारी दिलचस्पी के लिए मैं एक भूख की मौत का हाल लिखता हूँ, वह मौत जो तुम्हारी समझ में यहाँ ग़दर मचा देती, लेकिन जो .खुद हिन्दोस्तानियों की निगाह में एक पानी के बुलबुले से अधिक महत्त्व नहीं रखती।

जाड़े के दिन थे—सुबह का वक्त। यकायक मेरा कुत्ता बुरी तरह भूकने लगा। मैंने ओवरकोट डाला और मैं बाहर आया। दूर पर बिजली की मद्धिम रोशनी में कुछ भिखमंगे चले आ रहे थे। सबसे आगे एक छोटा-सा लड़का था, क़रीब ग्यारह वर्ष का और, तुम्हें यक़ीन न होगा, वह जंगली बिल्कुल नंगा था। रूखे-रूखे बाल, पीला चेहरा, बुरी तरह फूला हुआ पेट और लकड़ी की तरह पतली टाँगे। उसके पीछे दो बुड्ढे थे। एक की लम्बी दाढ़ी में कोचड़ लगा हुआ था और दूसरे का एक पैर किसी बीमारी से फूल गया था। उनके पीछे तीन औरतें थीं, जिनके लिबास का हाल लिखना अश्लीलता होगी। उसमें से एक अभी कम उम्र की लड़की थी। एक तरफ़ उसके बालों ने और दूसरी तरफ़ उसके बच्चे ने उसकी छातियाँ ढक रक्खी थीं। यह हिन्दोस्तानी औरतों के पहिनाव का तरीक़ा है, जिसकी इतनी तारीफ़ तुम कर रहे थे, जब तुमने पेरिस में जूली को सारी पहिने देखा था। और जानते हो उसकी यह हालत क्यों थी? इसलिए नहीं कि उसको कपड़े नहीं मिल सकते थे, बल्कि इसलिए कि इस तौर से नंगे रहने पर उसे शायद आसानी से भीख मिल सकती थी। सबसे पीछे एक जवान आदमी था, जो धीमे-धीमे कराह रहा था, और दोनों हाथों से अपने पेट को दबाये था। शायद वह ज्यादा खा गया था, क्योंकि तुम्हें यह नहीं मालूम कि हिन्दोस्तानी भिखमंगे कितने लालची होते हैं।

मेरे घर के आगे हिन्दोस्तानी मुसल्मानों की एक क़ब्रगाह है। पहले मैंने सोचा शायद क़यामत का दिन आ गया है और कब्रों के पत्थरों को तोड़कर ये मुर्दे न्याय के लिए जा रहे हैं, क्योंकि तुम उनकी शक्लों से ज़िन्दगी का कोई भी चिन्ह नहीं पा सकते थे। लेकिन उसी समय एक ऐसा वाक़या हुआ कि मुझे विश्वास हो गया कि वे ज़िन्दा हैं। मैं अपनी नन्हीं बेबी के लिए

चाकलेट लाया था और उस पर लिपटा हुआ काग़ज़ राह में पड़ा था। आगे वाला नंगा लड़का अपनी पतली-पतली टाँगों पर झुका और लपक कर वह टुकड़ा उठा लिया। पलभर उसे अजीब भूखी निगाहों से देखा और बड़े चाव से चाटा। और फिर चारों ओर निगाह घुमाकर झटसे उसे निगल गया। मुझे बहुत ताज्जुब हुआ—हिन्दोस्तानी काग़ज़ भी खाते हैं। शायद करेन्सी नोट भी खा जाते होंगे। पर आजकल तो यहाँ काग़ज़ पर भी नियन्त्रण है।

ख़ैर, तो वे इतने धीरे-धीरे चल रहे थे कि एक बिजली के खम्भे से दूसरे तक आने में उन्हें कम-से-कम बीस मिनट लगे होंगे। शायद वे सचमुच भूखे और कमज़ोर थे।

वह जवान भिखमंगा मेरे सामने रुका, शायद कुछ माँगने के इरादे से। तुम नहीं जानते कि मुझे इन भिखमंगों से कितनी नफ़रत है। मैंने फ़ौरन अपने कुत्ते को इशारा किया और वह झपटा। भिखमंगा भागा और लड़खड़ा कर गिर गया। कुत्ते ने अपने दाँत गड़ाये लेकिन मैंने उसे वापस बुला लिया—मेरा कुत्ता बहुत समझदार है—वह हिन्दोस्तानी नस्ल का है और नेटिव कुत्ते बहुत ही वफ़ादार होते हैं। मैंने भी उसे खिला-खिला कर इतना मोटा कर दिया है जैसे कोई हिन्दोस्तानी सेठ या पुलिस का दारोग़ा जिनकी तस्वीरें तुमने "किपलिंग" की किताबों में देखी होंगी।

वह आदमी ज़ोर-ज़ोर से कराह रहा था। ठंढ से उसका बदन जकड़ गया था और वह उठने की बेकार कोशिश कर रहा था। उसके साथी पल भर रुके, उन्होंने एक ख़ूनी निगाह से उसकी ओर देखा, अजीब तौर से सर झटका और रेंगते हुए आगे चले गये, उसे मरता हुआ छोड़ कर। यह उनके लिए साधारण-सी बात हो गई थी।

वह लड़की रुकी। उसने अपने बच्चे को जमीन पर रख दिया। मुझे उस पर तरस आ रहा था और शायद मैं उसकी कुछ मदद भी करता अगर मैं एक अंग्रेज न होता क्योंकि एक अंग्रेज के लिए हिन्दोस्तानियों की मदद करना अपमान-जनक समझा जाता है। मुझे विक्टोरिया कालेज में हिन्दोस्तानी विद्यार्थियों के सामने "सौन्दर्य का देश-भारत" विषय पर भाषण देना था; मैं उसकी तैयारी करने लगा।

शाम को जब मैं वापस आया, तो देखा वह आदमी चुप-चाप पड़ा है। वह औरत कहीं चली गई थी। आधे घंटे में वह लौटी। उसकी गोद में बच्चा था और एक हाथ में एक सड़ी रोटी का टुकड़ा, और केले के छिलके। वह पास आई और उस आदमी से कुछ कहा। उसने कुछ जवाब न दिया। पास में नाली धोने का नल था। उस लड़की ने अपना पल्ला भिगोया और उसके मुँह में दो बूँदें निचोड़ीं—पल भर रुकी और फिर वह रोटी का टुकड़ा उसके मुँह में डाल दिया। फिर भी आदमी कुछ न बोला, न हिला-डोला। उस औरत ने अपना सूखा हाथ उस आदमी की पसलियों पर रक्खा—उसके बाद उठी—पल भर चुप रही और उसके बाद सूखे गले से सुबकने लगी। वह आदमी मर चुका था।

औरत ने बच्चे की बाँह पकड़ी और रेंगते हुये सड़क के दूसरे किनारे पर सर थाम कर बैठ गई। जैसे उसने कोलतार से बनी हुई उस पतली सड़क को जिन्दगी और मौत की विभाजन रेखा समझ लिया हो।

वह आदमी निश्चेष्ट पड़ा था। उसके अधखुले मुँह पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं और मुँह में से आधी रोटी झूल रही थी। वह ऐसा मालूम पड़ता था जैसे सर चार्ल्स नेपियर

का बयान किया हुआ हिन्दोस्तानी बाजीगर जो अपने मुँह से अजीब-अजीब चीज़ें निकाल देता है।

अँधेरा छा गया, वह औरत वहीं बैठी रही। रात को ऐसा मालूम हुआ कि टामी ठण्ड से कूँ-कूँ कर रहा है। रोज़ी ने उसे अपने बिस्तरे पर बुला लिया। पर वह आवाज़ न बन्द हुई। मैंने खिड़की खोल कर बाहर झाँका—ग़ज़ब की सर्दी थी, हिन्दोस्तान उतना गर्म मुल्क नहीं जितना तुम समझते हो। यहाँ काफ़ी सर्दी पड़ती है जिसका असर तुम हिन्दोस्तानियों की सर्ददिली में देख सकते हो।

वह औरत सड़क के उस किनारे से इस किनारे पर आ गई थी। पता नहीं किस ताक़त के सहारे उसने ज़िन्दगी और मौत के बीच की उस सड़क को पार कर लिया था, वह भी इस भूख और सर्दी में। उसका बच्चा भूख और सर्दी से कुनमुना रहा था। मेरी नींद उचट गई थी। मैंने देखा, वह औरत उठी, उस मुर्दे के पास गई और उसके मुँह से निकला हुआ रोटी का सड़ा टुकड़ा उस बच्चे के हाथ में दे दिया। बच्चा उसे खाने लगा, वह उसके मुर्दा बाप की देन थी—वह रोटी का सड़ा टुकड़ा, मुर्दे के मुँह से निकला हुआ। यक़ीन मानो राबर्ट।

बच्चे ने फिर चीख़ना शुरू किया। औरत फिर उठ कर मुर्दे के पास गई। उस पर से उसका वस्त्र जो एक फटा हुआ बोरा था, उठा लिया। मुर्दा वस्त्रहीन हो गया, पर फिर औरत झिझकी और काँपी—और टाट उसी पर डाल दिया। बच्चा काँप रहा था और पसलियों में सर्दी से जमे हुये कफ़ की घरघराहट साफ़-साफ़ सुनाई पड़ती थी। वह मुर्दे की बग़ल में बैठ गई और आधा टाट अपनी ओर खींच लिया। उसके नीचे बच्चे को ढाँक कर दुबका दिया और बग़ल में ख़ुद लेट गई। एक

ओर मुर्दा, बीच में बच्चा, और दूसरी ओर माँ—यह एक बंगाली परिवार था।

मुझे नींद आ रही थी। मैं सो गया। सुबह लाश उठाने की गाड़ी आई। मुर्दा भरते वक्त मालूम हुआ बच्चा दो लाशों के बीच में था। माँ भी फिर सो कर उठी नहीं। उन्होंने माँ की लाश और बच्चे को बीच सड़क में छोड़ दिया। गाड़ी में जगह नहीं थी। शायद मुर्दों ने, बिना सरकार की असुविधा का ध्यान रक्खे, ज्यादा से ज्यादा संख्या में स्मशान-यात्रा का निश्चय कर लिया था।

मैंने तुम्हें बताया है कि मेरे घर के आगे एक क़ब्रिस्तान है। और उस क़ब्रिस्तान के सामने एक सिख रेजीमेन्ट का पड़ाव। कभी-कभी तो चाँदनी में सफ़ेद क़ब्रों और सफ़ेद तम्बुओं में फ़र्क ढूँढ़ना मुश्किल हो जाता है। ख़ैर, गेहूँ और रसद की एक लारी उस ओर जा रही थी। सड़क पर लाश पड़ी हुई थी। लारी रुक गई, फ़ौजी उतरे और बन्दूक़ के कुन्दों से लाश को एक ओर हटा दिया। लारी चल दी। पर वह बेचारा बच्चा लारी के पिछले पहियों के नीचे आ गया—पच्च—एक दर्दनाक-सी आवाज़ हुई—एक ख़ून का फ़व्वारा छूटा और एक बड़ा-सा धब्बा वहाँ फैल गया। उस बच्चे की अंतड़ियाँ टायरों में फँसी रह गईं और दूर तक लहू की लाल रेखा खिंच गई।

पीछे से कुछ आहट हुई। मैंने मुड़ कर देखा। रोज़ी गुस्से से तमतमाई हुई खड़ी है। वह चीख़ कर बोली—"लारी रुकवाओ!" मैंने उसे आहिस्ते से समझा दिया कि इसमें ड्राइवर का क्या क़ुसूर। बच्चे को दबने के पहले चीख़ना चाहिये था। दबने के बाद चीख़ना बच्चे की नासमझी थी—रोज़ी भी कभी-कभी तुम्हारी तरह भावुक हो जाती है।

यह एक अदना-सा वाक़या है। तुम ख़याल कर रहे होगे, इससे बड़ी नाराज़गी फैली होगी—जाँच-कमीशन बैठा होगा—आन्दोलन मचा होगा।

यह सब कुछ नहीं मेरे दोस्त! सामने रहने वाली बंगाली लड़कियाँ उसी ख़ुशी और सजधज से कालेज गईं, बग़ल के सेठ जी का रेडियो उतनी ही सुरीली आवाज़ में हापुड़, मेरठ और दिल्ली के गेहूँ के भाव बतलाता रहा—किसी पर कुछ भी असर न हुआ। सिर्फ़ उस ग़ुलाम धरती पर ख़ून की रेखा खिंच गई और उसे भी मुसाफ़िरों के जूतों की रगड़ ने मिटा दिया।

यह यहाँ की हालत है। तुम्हारा विचार बिल्कुल ही ग़लत है। उम्मीद है तुम अपनी भावुकता को छोड़ दोगे और कामन्स में फ़िज़ूल के सवाल न पूछोगे। क्योंकि उनसे हिन्दोस्तानियों में तो नहीं, सम्भव है अंग्रेज़ों में ही कुछ असन्तोष फैले; और यह युद्ध-प्रयत्नों में बाधक हो।